卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

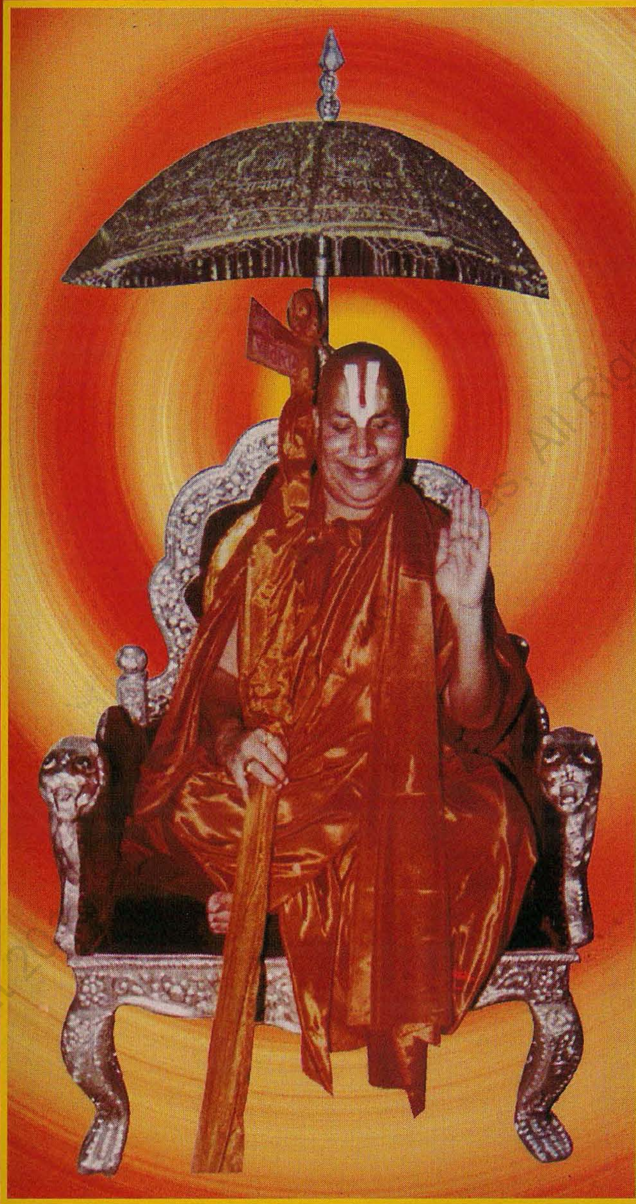
लघुरघुवरम्

(खण्डकाव्यम्)



प्रणेता

धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज
(चित्रकूटधाम)



धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज
(चित्रकूटधाम)

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

लघुरघुवरम्

(खण्डकाव्यम्)

प्रणेता

धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

(चित्रकूटधाम)

प्रकाशक

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास

चित्रकूटधाम सतना (म. प्र.)

● **प्रकाशक**
श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास
आमोदवन, चित्रकूटधाम
जनपद–सतना (म० प्र०)

● **प्रथम संस्करण—११०० प्रतियाँ**

● **प्राप्ति स्थान**
श्रीतुलसीपीठ आमोदवन
चित्रकूटधाम (सतना) म० प्र०

● **न्यौछावर—११/- रुपये मात्र**

● **मुद्रक :**
साहित्य सेवा प्रेस
१५६ छीपी टैंक, मेरठ (उ० प्र०)

पुरोवाक्

मुरारिंगन्पद्भ्यां जितसरसिजाभ्यां नृपगृहे,
मुहुः कर्षंश्चेतो मधुपनिकुरम्बं सुकृतिनाम्।
हरिर्हारंहारं निखिलभवतापं तनुरुचा,
हरन्हारं हृष्यन् लघुरघुवरोऽयं विजयते॥

भगवती सुरभारती जहाँ एक ओर अपनी अनादिकालीन अविच्छिन्न शब्दोच्चारणपरम्परा प्रवाह को अक्षुण्ण रखती हुई भगवती वाग्देवता की भी प्रणम्यता से गौरवान्वित हैं वहीं दूसरी ओर उन्हें परमेश्वरीय तथा दैवी भाषा होने का भी त्रिभुवनातिशायी विरुद प्राप्त है। इसीलिए भगवती श्रुति भी संस्कृतभाषा के ज्ञान एवं विशुद्धिपूर्वक समुच्चार्यमाण एक शब्द को भी स्वर्ग एवं मर्त्यलोक में कामधेनु सदृश समस्त अभीष्ट फलदाता के रूप में समाम्नात करती रहती हैं। महर्षि वाल्मीकि से लेकर अद्यावधि सतत प्रवर्तमान संस्कृतभाषा की काव्यपरम्परा अरबों वर्षों से सुरभारती के भविष्णुवैभव का गान करती हुई भगवती भारतमाता की भी भारतीय आरती उतारती आ रही है। वैदर्भी के अतिरिक्त लाटी, पाञ्चाली तथा गौड़ी रीतियों में अनेक कुशल कविपुंगवों ने चित्र, मुरजबन्ध, एकाक्षरी, यमकश्लेषगर्भित काव्यमाणिक्यवरूथों द्वारा सुरभारती का काव्यभाण्डागारभरते हुए अपने अप्रतिमप्रातिभशिल्पकौशल का परिचय दिया है।

इसी परम्परा में श्रीलोकलोचनाभिराम भगवान् श्रीसीतारामजू की निर्व्याजकरुणाकादम्बिनी की शीतलच्छाया में मुझ जैसे एक निष्किञ्चन सुरभारती सेवक ने भी एक नूतन भगवदीय सफल प्रयास किया है। यह सर्वप्रथम लघुमात्राओं में ग्रथित काव्यपुष्पहार निश्चित ही कुन्देन्दुतुषारहारधवला के मुखोल्लास के साथ ही भगवती गीर्वाणवाणी के भी श्रीचरणकुशेशयों की श्रीवृद्धि में भी सफल सहायक होगा। चूँकि जीव चौरासी लाख योनियों में

सतत भटकता हुआ स्वस्वरूप, परस्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप तथा विरोधीस्वरूप का शास्त्रीय परिज्ञान न होने के कारण अनादिकालीन अज्ञानपरिच्छिन्नचेतस्क होकर भवसिन्धु में गोते लगाता रहता है। उसी की समुद्धिधीर्षा से मैंने इस खण्ड-काव्य में लघुमात्रा से युक्त चौरासी श्लोक ही प्रणीत किये हैं। इसमें अपने आराध्य, स्वजीवनसर्वस्व वसिष्ठानन्दवर्धन शिशु राघव सरकार की मञ्जुल मञ्जुल बालरूप झाँकियों को ही यथार्थरूप में झाँक झाँककर मैंने बिना प्रयास से ही उपस्थित परिष्कृत तथा व्याकृत शब्दों के माध्यम से अपनी अन्तरंग तरंगों में ही गुनगुनाया है। इसमें पूर्वार्द्ध के छन्दों में श्रीराघवसरकार से विनय किया है एवं उत्तरार्द्ध में मुन्ना सरकार के जन्म से लेकर विविध बालसुलभ चेष्टाओं एवं अन्तरंग दर्शनों का यथामति निदर्शन कराया गया है। इस सम्पूर्ण काव्य में 'अ, इ, उ इन तीन ह्रस्व मात्राओं का ही अवलम्बन किया गया है। इसका एक अक्षर भी अतसिकुसुम सुकुमार कौसल्याकुमार भगवान् श्रीराघवसरकार के प्रेमपीयूष से वर्जित नहीं है। यह मेरा प्रतिज्ञान है। मैं आशान्वित हूँ कि यह लघुरघुवरम् खण्डकाव्य एक ओर जहाँ श्रीबालरूप राघव सरकार के उपासकों का जीवन पाथेय बनेगा वहीं दूसरी ओर सारस्वतों की साहित्यिक साधना में अनुपमेय समुपकारक भी सिद्ध होगा।

मैं श्रीतुलसीपीठ सौरभ पत्रिका के सुयोग्य मधुकर श्रीसूबेदार तिवारी, शीतलच्छाया बक्सर (बिहार) को अनेक साधुवाद देता हूँ कि जिन्होंने अपने ब्राह्मणोचित विशुद्ध धन का सुरभारती साहित्य के क्रान्तिकारी काव्य के मुद्रण में विनियोग किया है।

श्रीराघवः शंतनोतु

इति मंगलमाशास्ते

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य (चित्रकूटधाम)

॥ श्रीः ॥

लघुरघुवरम् (खण्डकाव्यम्)

जयति जगति लघु रघुवर हरिरति
दिशति भजत इह सुखमधिकरि रति।
सुरसरिदिवयदनुचरित मलयति
निखिल भुवनमथ पतितममलयति ॥१॥

हिन्दी टीका

बन्दि राम सिय कमल पद सिर धरि पांशु प्रसाद।
लघुरघुवर निज काव्य जनगिरा करउँ अनुवाद॥

जो परमेश्वर भजन करने वालों को अलौकिक सुख प्रदान करते हैं तथा करि अर्थात् गजेन्द्र ने भी जिनके श्रीचरणों की भक्ति की, जिनका पावन चरित्र गंगाजी के समान समस्त संसार को व्याप्त कर रहा है और भवसागर में पतित जीव को पवित्र कर रहा है ऐसे लघुबालकरूप में वर्तमान रघुकुल में श्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हरि श्रीराम की जय हो ॥१॥

अभिनव जलधर जलज रुचिररुचि
कल-वल-वचन शिशिर कर रस सिंचि।
दशरथ सुवि मम सुमन इभ विमुचि
सुखमभिरमतु भवति भगवति शुचि ॥२॥

नवीन बादल तथा कमल के समान सुन्दर कान्ति वाले, अपने मधुर तोतले वचन से चन्द्रकिरण के रस रूप अमृत का सिंचन करने वाले, 'इभ' अर्थात् गजेन्द्र को मुक्त करने वाले, ऐसे दशरथनन्दन, ऐसे छहों ऐश्वर्य से सम्बद्ध भगवान् आप श्रीराम में मेरा पवित्र सुन्दर मन सदैव सुखपूर्वक रमता रहे ॥२॥

निजपदविनत विगुणमपि गुणयति
शिशुसुमशरशतरुचिमवगणयति ।
सुजन सुमनसि वसतिमधिकलयति
भवतु भवति रति रमलममलयति ॥३॥

जो अपने श्रीचरणों में प्रणत भक्त के दुर्गुण को भी सद्‌गुण बना देते हैं तथा जो अपनी कान्ति से करोड़ों-करोड़ों बालरूप में वर्तमान कामदेव को भी तिरस्कृत करते रहते हैं तथा जो सज्जन महानुभावों के मन मन्दिर में सदैव अधिकृत रूप से विराजते रहते हैं ऐसे निर्मल परमहंसों के मन को भी निर्मल करने वाले आप श्रीराम में मेरी बुद्धि सदैव लगी रहे ॥३॥

निरवधिनिरुपम शुभ गुण सुखवति
लघु लघु धनु रिपुसदन विशिखवति ।
अगजगदवति भवति मृग खगवति
भवति भवतु मम मति रथ भगवति ॥४॥

जो सीमा रहित एवं अनुपम सद्‌गुण एवं सुख के निधान हैं एवं जिन्होंने छोटे-छोटे धनुष, तरकस तथा बाण धारण किये हैं ऐसे समस्त जड़ चेतन की रक्षा करने वाले, शोभामय, श्री हनुमान एवं श्री जटायु के भी स्वामी षडैश्वर्य सम्पन्न बालरूप आप श्रीराम में मेरी बुद्धि सतत आसक्त रहे ॥४॥

मतिमति मुनिमति युवति सुरतिमति
चरण नलिननतसदमित गतिमति ।
भवभयशमन सुकृतिमति धृतिमति
मतिरतिलषतु चरणरत हनुमति ॥५॥

जो प्रशस्त बुद्धि से युक्त तथा मुनियों की मति रूपिणी युवती के श्रेष्ठ प्रेम के आश्रय हैं तथा जो अपने श्रीचरण कमल में अनु-

राग करने वाले महात्माओं के असीम सामीप्य मुक्ति के भी आश्रय हैं एवं भक्तों के भवभयनाशन रूप श्रेष्ठ कर्मों से युक्त तथा विशुद्ध धैर्य के निधान ऐसे उन आप श्रीराम में मेरी बुद्धि अत्यन्त अभिलाषा युक्त हो जिनके श्रीचरणों में श्री हनुमान जी का परम अनुराग है ।।५।।

दशरथ सुकृतबिबुधतरुफल पुषि
जननिहृदिजविगलदमलरसजुषि ।
वनजवनदवनधिवरदसुवपुषि
दृगभिरमतु मम मनसिजमदमुषि ।।६।।

जिनका श्रीविग्रह नीलकमल नील मेघ तथा नील सागर के समान सुन्दर तथा अभीष्ट वरदान देने वाला है। जिन्होंने अपनी शोभा से कामदेव का भी सौन्दर्य मदभंग किया है जो प्रीतिपूर्वक माता श्री कौसल्या के वक्षोज से वात्सल्य विगलित परम पावन दुग्ध रस का पान करते रहते हैं, ऐसे श्री दशरथ जी के सुकृत कल्पवृक्ष के परमानन्द फल का पोषण करने वाले बालरूप श्री राघव में मेरे नेत्र निरन्तर रमते रहे ।।६।।

जय दिनकर कुल वनरुह दिनकर
जय तनु रुचि जित शिखिगल जलधर।
जय हर हृदुंदज मधुकर मलहर
जय दशरथसुत शिशु लघु रघुवर।।७।।

हे सूर्यकुल कमल के सूर्य श्रीराम आपकी जय हो। अपनी शोभा से मयूर के कण्ठ एवं बादल को जीतने वाले श्यामसुन्दर आपकी जय हो। भगवान् शंकर के हृदयरूप कमल के भ्रमर तथा भक्तों के मनोमल को दूर करने वाले प्रभु आपकी जय हो। हे दशरथ नन्दन शिशुरूप लघुरघुवर छोटे सरकार आपकी जय हो ।।७।।

जय रवि कुल शुभ सुकृत सुतरु फल
जय गत बल-बल सरल विपुल बल।
जय निज भुज बल दमित दनुज दल
जय वर चरित महित हित महितल ॥८॥

हे सूर्यकुल रूप कल्पवृक्ष के सुन्दर सुकृत फल रूप श्रीराम आपकी जय हो। हे निर्बलों के बल सरल स्वभाव अमित बलशाली परमेश्वर आपकी जय हो। अपने भुजाओं के बल से दनुज दल का दमन करने वाले रणधीर! आपकी जय हो तथा हे अपने श्रेष्ठ चरित्र से सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल की पूजा करने वाले रघुवीर आपकी जय हो ॥८॥

जय-जय जनित जलज पति कुल सुख
जय-जय शरदुडुपति रुचि जित मुख।
जय-जय समवित कुशिकतनय मख
जय मुनि गृहिणि दुरित हर शिव सख ॥९॥

हे कमल के ईश्वर सूर्यकुल के सुख के सृष्टा प्रभु! आपकी जय हो। शरदकालीन चन्द्रमा के समान मुख वाले भगवन्! आपकी जय हो। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने वाले प्रभु! आपकी जय हो हे मुनि पत्नी अहल्या के पापहारी भगवान् शंकर के मित्र! श्रीराम आपकी जय हो ॥९॥

जय-जय मिथ नृप नगर सुकृतकर
जय-जय शकलित शिव धनु रघहर।
जय-जय जडित परशुधर नरवर
जय-जय जनक दुहितृवर रघुवर ॥१०॥

हे महाराज मिथ के नगर मिथिला के पुण्य समूहों के रचयिता आपकी जय हो। हे शिवधनुष को तोड़ने वाले पापहारी बीरवर!

आपकी जय हो। हे परशुराम को निश्चेष्ट बनाने वाले नरश्रेष्ठ आपकी जय हो। हे जनकराजपुत्री सीता के वर रघुवर ! आपकी जय हो ॥१०॥

जय सुर नर मुनि सकल सुख निलय
जय-जय विहित भृगु तिलक मदलय।
जय-जय सुखित धरणि सुर कुवलय
जय-जय विहित जलधिवर सुवलय ॥११॥

हे देवताओं, मनुष्यों, तथा मुनियों के, समस्त सुखों के मन्दिर श्रीराम आपकी जय हो। परशुराम का मद भंग करने वाले प्रभु आपकी जय हो ब्राह्मण रूप कमल को सुखी करने वाले सूर्य आपकी जय हो। समुद्र सीमा पर, पृथ्वी के कंकण जैसे परिसीमन अवधि का निर्माण करने वाले सार्वभौम महाराज ! आपकी जय हो ॥११॥

मुनिवर गृहिणी दुरितहर जय जय
हर धनुरहिखगकुलवर जय जय।
कुतुकदलिल भृगुमदभर जय जय
धरणि दुहितृवर सुखकर जय जय ॥१२॥

हे गौतम मुनि पत्नी अहल्या के पापहारी श्रीहरि, आपकी जय हो। हे शिवधनुष रूप सर्प के विसृंसक पक्षिराज गरुड सदृश श्रीराम आपकी जय हो। हे परशुराम के मदभंगकर्ता परमेश्वर आपकी जय हो। हे सीतावर सर्वसुखकर सर्वेश्वर आपकी जय हो ॥१२॥

जय जय नरवर तपनकुलतिलक
जय जय निटिल लसित ललित तिलक।
जय जय समकल कलित समकलक
जय धृत हृदि धरणिसुर पदफलक ॥१३॥

हे मनुष्य श्रेष्ठ सूर्यकुलतिलक आपकी जय हो। तथा भाल-मण्डित ललित ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रभु आपकी जय हो। हे कलातीत कुटिल अलकावली से मण्डित मुखार विन्द वाले प्रभु आपकी जय हो श्री वक्षस्थल पर ब्राह्मण के चरण चिन्ह को धारण करने वाले आपकी जय हो ॥१३॥

द्रव मयि मलवति मनुज कुल भरण
मनुकलकुमुद सुखद शिशिर किरण।
निजरत विनत विरत दुरित हरण
सुरनर मुनिनत नवननलिनचरण ॥१४॥

हे मनुष्य कुल भूषण ! हे मनुकुल के कुमुद चन्द्र ! हे अपने श्रीचरणों में विनम्र विरत जनों के पापहारी तथा सुर नर मुनियों से वन्दित नवीन चरण कमल वाले प्रभु ! आप मुझ जैसे मलिन व्यक्ति पर भी कृपा करें ॥१४॥

भव मयि सकरुण इमथन हृदयन
धरणि जननिमुख जलज मधुचयन।
प्रणत हृदय वर सदन शुभ शयन
सम शुभ गुण गृहकल कमल नयन ॥१५॥

हे कामारि ! शंकर के हृदय में विहार करने वाले श्रीराम मुझ पर करुणा कीजिये। धरणी अर्थात् पृथ्वी ही जिनकी माँ है, ऐसी श्रीसीता जी के श्रीमुख कमल के प्रेम मधु का चयन करने वाले प्रभु ! आप मुझ पर कृपा कीजिए। प्रणत भक्तों के हृदय में शयन करने वाले समस्त श्रेष्ठ गुणों के भवन कमललोचन प्रभु आप मुझ पर करुणावान हो जाइये ॥१५॥

कुरु सकरुण इशमिभ मथनमहित
मगध दुहितृसुत हृदजिरविनिहित।

अशरण शरण भयहरण जनहित
त्रिभुवन जननि रमणि गृहिणि सहित ।।१६।।

हे इभ अर्थात् गजासुर के नाशक भगवान शंकर के द्वारा पूजित मगध कन्या सुमित्रा के पुत्र श्री लक्ष्मण जी के हृदयाङ्गन में निवास करने वाले परमेश्वर ! हे असरणशरण भक्त भय हारी, जनहितकारी श्रीराम हे त्रिभुवन जननी श्रीसीता के साथ विराजमान प्रभु श्री राम मुझ पर करुणामयी दृष्टि कीजिए ।।१६।।

जगदिदमखिल मवन धन समवसि
जगदिदमखिल मवन धन समवसि ।
जगदिदमखिल मवन धन समवसि
जगदिदमखिल मवन धन समवसि ।।१७।।

यह चित्रकाव्य है इसमें अव् धातु के अर्थों की विविधता के आधार पर एक ही चरण की चार आवृत्तियाँ की गयी हैं। अर्थात् हे भक्तों का अवन यानि रक्षा ही जिसका धन है ऐसे आप इस सम्पूर्ण जगत से अंतर्यामो रूप से सतत समवसि अर्थात् गमन करते रहते हैं। हे अवनधन भक्तों का प्रेम ही जिसका धन है ऐसे आप, इस सम्पूर्ण जगत को अपना शरीर मान कर समवसि अर्थात् पूर्ण रूप से आलिङ्गन करते रहते हैं। हे अवनधन तृप्ति ही जिसका परम धन है ऐसे आप इस सम्पूर्ण जगत को प्रशासित करते रहते हैं। हे अवनधन अर्थात् शोभाधन के परम धनी प्रभु श्रीराम आप इस सम्पूर्ण जगत में अंतर्यामी रूप से सदैव प्रविष्ट रहते हैं ।।१७।।

अवध नगर मभि सगर भवतरसि
दिशि-दिशि विमल विरुदमथ वितरसि ।
तरयसि सत दुह सतत मनुतरसि
पयसिज दलमिव भव पयसि तरसि ।।१८।।

हे परमात्मन् जो महाराज सगर को अभीष्ट था। ऐसे श्रीअवध नगर में आप प्रत्येक कल्प के सातवें मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता के चतुर्थ चरण में प्रभव नामक संवत्सर की चैत्र शुक्ल नौमी को अभिजित मुहूर्त में अवतार लेते हैं तथा प्रत्येक दिशा में अपने दिव्य यश का विस्तार करते हैं। आप महात्माओं को भवसागर से पार करते रहते हैं। और स्वयं भी पार होते रहते हैं। आप कमलपत्र की भांति भवसागर के जल में डूबते नहीं तैरते रहते हैं ॥१८॥

हरिरिह निज जन दुरितमपहरसि
कुशल मनुज मणि चरित मनुहरसि।
कुटिल मनस इभ महित परिहरसि
गत मल हृदजिर इकदन विहरसि ॥१९॥

हे प्रभो आप हरि हैं, इसलिए अपने भक्तों के कष्ट को नष्ट करते हैं। आप कुशल कर्म करने वाले श्रेष्ठ मनुष्य के चरित्र का अनुसरण करते हैं। हे गजेन्द्र पूजित आप कुटिल मन वालों को छोड़ देते हैं तथा हे कामनाशक आप निर्मल मन वाले भक्तों के हृदयाङ्गन में बिहार करते हैं ॥१९॥

प्रणत हृदय वरवनमभि विचरसि
गत मल नयन सुमनस मनुचरसि।
अघ हर विशदित चरित परिचरसि
सममिह जगति सुगदित गुणचरसि ॥२०॥

हे निर्मल मन वाले व्यक्ति को नेत्र के समान प्रेम करने वाले परमात्मा आप शरणागतों के श्रेष्ठ हृदय वन में विचरण करते हैं। सुन्दर मन वाले व्यक्ति की सेवा करते हैं। और साथ ही उसका परिचरण करते हैं। हे चरित्र को विमल करने वाले प्रसिद्ध गुणों के मन्दिर, आप जगत में समभाव से गतिशील रहते हैं ॥२०॥

प्रभुरथ जगदघ तिमिरमभि भवसि
जगदुदय लय भवविधिसु विभवसि।
अशरण शरण समरण मनुभवसि
रविकुल रविरथ विमलदृशि भवसि ॥२१॥

हे राघवेन्द्र आप सर्व-समर्थ हैं। इसीलिए आप संसार के पाप रूप अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। इसीलिए आप संसार के पालन, प्रलय, और सर्जन में समर्थ है। हे अशरण शरण आप अपने शुद्ध शरणागत का अनुभव करते हैं। आप सूर्यकुल के सूर्य हैं। अतः निर्मल नेत्र वाले महानुभाव के समक्ष ही आप प्रकट होते हैं ॥२१॥

सुर सदवनि सुर बिपदमपहरसि
रतिमथ पदरत मनस उपहरसि।
सुर नर मुनिगण नयनमपिहरसि
शिशु दिनकर इव तिमिरमिह हरसि ॥२२॥

हे राघवेन्द्र सरकार आप देवता, संत, तथा ब्राह्मणों की विपत्ति को हर लेते हैं और अपने चरणों में आसक्त मन वाले महानुभावों को भक्ति का उपहार देते हैं। अपने रूप माधुरी से देवता, मनुष्य तथा मुनियों के नेत्रों को चुरा लेते हैं और इस संसार में बाल सूर्य की भाँति अज्ञानान्धकार को दूर कर देते हैं ॥२२॥

कर सरसिज इषु धनुरपि कलयसि
पविरिव भवगिरि सकल शकलयसि।
निज हृदि जगदगमघ हर कलयसि
बिमुख निकरमिह विकल बिकलयसि ॥२३॥

हे श्री रामभद्र आप अपने श्री करकमलों में धनुष बाण हो धारण करते हैं। हे कलातीत अकार विष्णु को भी अपनी कला से उत्पन्न करने वाले प्रभु आप संसार पर्वत को वज्र के समान खण्ड-खण्ड कर देते हैं। हे पापहारी आप अपने हृदय में समस्त जड़ चेतन को धारण करते हैं। हे विशिष्ट कला सम्पन्न आप अपने से विमुखों को व्याकुल कर देते हैं ।।२३।।

विषम विषमशर रुजमभि शमयसि
मनुज ! दनुजदल दरमभि दमयसि।
रिपुमपि सुतमिव निजपदममयसि
विनत विपदमपि विपदविरमयसि ।।२४।।

हे मनु बंश के प्रसूत प्रभु ! राम आप भयंकर पंचबाण कामदेव के द्वारा उत्पन्न किये हुए रोग को नष्ट कर देते हैं और दैत्य दल से होने वाले भय का भी दमन कर देते हैं। हे परमेश्वर आप शत्रु को भी पुत्र की भांति अपने चरणों में स्थान देते हैं । हे विबिध चरणों वाले बिराट आप बिनम्र महानुभावों की भयंकर बिपत्ति को भी बिनष्ट कर देते हैं ।।२४।।

भवभयमपिमम धृतशर गमयसि
मुनिजन हृदपि यमित यम यमयसि।
सुरपति मपि नरपतिवर नमयसि
चरण शरणमथ निजपदि रमयसि ।।२५।।

हे बाण धारी जीवों के रक्षक प्रभु ! आप भव भय को भी नष्ट कर देते हैं। हे यमराज को भी नियंत्रित करने वाले ! आप मुनियों के हृदयों को भी अपनी गुण की रस्सी में बाँध लेते हैं। हे राजाधिराज आपने इन्द्र को भी झुका दिया। तथा अपने श्री चरणों के शरणागत भक्त को अपने परम पद साकेत में रमाते हैं ।।२५।।

जन हृदिसदनमदनमथ परि भव
भव दव दहन विषय दवमभिभव।
रघुकुल तिलक विनत निज जनमव
सकरुण दृगमल मयि विलपति भव ॥२६॥

हे भगवन्! प्राणी के हृदय भवन में निवास करने वाले आपके हृदय घर को जिसने अपना घर मान लिया हैं। ऐसे काम को परिभूत कर दीजिए। हे भववििपिन के अग्नि! आप मेरी विषयासक्ति ज्वाला से समाप्त कर दीजिए। हे रघुकुल तिलक श्रीराम अपने शरणागत सेवक की रक्षा कीजिए। हे निर्मल चरित्र! विलाप करते हुए मुझ सेवक पर अपनी करुणामयी दृष्टि कीजिए ॥२६॥

निजशुभसदनदहनमिम जहि जहि
मलवति बलवति करुणय नहि नहि।
जनसुख सुकृत हरणमज न जहिहि
किमुन सुकरमिह भवति सुभुज दहि ॥२७॥

हे अकार के परमार्थ परमात्मा अपने भक्त के अथवा आपके निजी पवित्र भवन को जलाने वाले इस दुष्ट काम को मार डालिए। इस मलिन तथा अत्यन्त बलशाली काम पर दया मत कीजिए करुणा मत कीजिए। अपने भक्तों के सुख और सुकृत का हरण करने वाले इस राक्षस को मत छोड़िये। हे भगवन! सुबाहु राक्षस को भस्म करने वाले आपके रहते क्या नहीं सम्भव है ॥२७॥

प्रकृति मृदुल निजगुणमिह परिहर
सतइभ सुखद विषद सुखमुप हर।
मम हृदजिर इरिपुशरणद
विहर हर सुखकर हर मुखशर मपहर ॥२८॥

हे प्रभो! अपने प्रकृति से मृदुल सुभाव को यहाँ छोड़ दीजिए। हे गजेन्द्र के सुखदाता! सज्जनो को सात्विक सुख का उपहार

दीजिए ! हे कामारि भगवान शंकर के शरणदाता मेरे हृदय रूप आँगन में बिहार कीजिए। हे शिव को सुख देने वाले भगवान् श्रीराम हरमुख अर्थात शिव जी के मुख के समान संख्यक पञ्च-बाणधारी काम को समाप्त कर दीजिये।

दिनमणि कुलमणि इदमथ मम शृणु,
वचन मरचन पतितजनमभिवृणु।
हृदय निहित मघकुधर मदर मृणु,
शिरसि शिरिष सरसिज कर मणि कृणु ॥२९॥

हे सूर्यकुल के मणि श्रीराम मेरा यह बचन सुनिए, हे नित्य बिग्रह परमेश्वर मुझ जैसे पतित जन को अपना मानकर अपना लीजिए। हे निर्भीक मेरे हृदय में स्थापित पाप पर्वत को नष्ट कर दीजिए। तथा मेरे शिर पर शिरीष पुष्प जैसे कोमल श्री हस्त रख दीजिए ॥२९॥

रुचि जित जलज जलद दशरथ सुत,
सुशिख विशिख मख खल कुल घृत हुत।
हर मम विषयमभय सुरनरनुत,
निवस मनसि मम धरणिदुहितृयुत ॥३०॥

हे अपनी शोभा से कमल तथा बादल को जीतने वाले दशरथ-नन्दन, बाण रूप अग्नि से युक्त समर यज्ञ में राक्षसरूप घृत का हवन करने वाले, निर्भय, देवताओं एवं मनुष्यों से प्रणम्य भूमिपुत्री श्री सीता से समन्वित हे राघवेन्द्र आप मेरे हृदय में निवास करें ॥३०॥

अयि गुण जलनिधि इरिपुनयनखर,
दहन शमनघन नववन धरवर।
करुणय मयि पदलसित गिरि शिखर,
शृणु शृणु मम गिरमभिमत गिरिधर ॥३१॥

हे गुणों के सागर हे काम शत्रु शंकर के नेत्राग्नि को शान्त करने के लिए, गम्भीर नवीन बादल श्रीराम ! अपने श्रीचरणों से चित्रकूट की शोभा बढ़ाने वाले हे प्रभो मुझ पर करुणा कीजिए। हे गिरिधर के प्रिय मेरी बात तो सुनिये ॥३१॥

मम परिरमतु निखिल जगद वितरि,
मन इदमवित स शिखि शशि सवितरि।
सवितरि भवितरि भवति भव पितरि,
हृदय निहित हित वसुमति दुहितरि ॥३२॥

जो सारे संसार के रक्षक हैं। तथा जिन्होंने सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि में अपने तेजोमयअंश से प्रवेश किया है जो सबके प्रेरक तथा दीप्त मान हैं। ऐसे संसार के पिता अपने मन मन्दिर में भूमिनन्दिनी सीता जी को विराजमान करानेवाले आप श्रीराम में मेरा यह मन रमता रहे। ॥३२॥

विरमतु जगत इतर रति मतिरथ,
मयि करुणय करुणित दृगनघ कथ।
हर इह वितथय कलियुगमवितथ,
गणय न मम कलुष कुधर मतिरथ ॥३३॥

हे कामसागर को पार करने वाली बुद्धिरूप रथ पर आरूढ़ प्रभु ! मेरी इतर देवता में लगी हुई बुद्धि जगत से विरत हो जाय। हे निष्पाप कथा वाले प्रभु अपनी करुणा भरी दृष्टि से मुझ पर कृपा कीजिए। हे अमोघ पराक्रम श्री हरे इस कलिकाल को ही व्यर्थ कर दीजिए हे अतिरथ सर्वश्रेष्ठ योद्धा मेरे पाप पर्वत को मत गिनिए ॥३३॥

इशुमति कुमति कदनकृति शुभवति
कृतिमति मति मति गतिमति विभवति।

प्रभवति भवति समखिल जगदवति
विलसतु मम मति गवति भगवति ।।३४।।

बाणधारी कुमति नष्ट करने वाले श्रेष्ठ कृतियों से युक्त कल्याणवान, बुद्धिमान, मोक्षदाता सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ, सम्पूर्ण जगत के रक्षक चित्रकूटपर्वतबिहारी, ऐसे आप भगवान् श्रीराम में मेरी बुद्धि विलास करती रहे ।।३४।।

अयि खरहर हरहृद्दज मधुकर,
करिकरकर दिनकर कुल दिनकर ।
दशरथ सुत जनकुमुदतुहिनकर,
विहर मनसि मम नमुचि कदन कर ।।३५।।

हे खरनामक राक्षस के नाशंकर्ता ! हे शंकर के हृदय कमल के भ्रमर ! हे हाथी के शुण्ड के समान हस्त वाले ! हे सूर्य कुल के सूर्य ! हे भक्त रूप कुमुद के चन्द्रमा ! हे नमुचि दानव के नाशक ! इन्द्र के भी रचयिता ! दशरथ नन्दन श्रीराम ! आप मेरे मन में बिहार करें ।।३५।।

जनक दुहितृ हृदयसदन जय जय,
तनरुचि विजित शतमदन जय जय ।
समरविनिहत दशवदन जय जय,
भुजबल विपुल खलकदन जय जय ।।३६।।

हे श्री जानकी जी के हृदय में बिहार करने वाले प्रभु आपकी जय हो जय हो । हे अपनी शोभा से सैकड़ो कामों को जीतने वाले आपकी जय हो जय हो । युद्ध में दशमुख रावण का वध करने वाले आपकी जय हो जय हो । अपने भुज बल से खलों का विनाश करने वाले आपकी जय हो जय हो ।।३६।।

वपुरभिजित नवनवघन जय जय,
चरणनिरत रतिरतजन जय जय।
चरितमहित हित मुनिवन जय जय,
दुरितदमन निजजनधन जय जय ॥३७॥

अपने शरीर की शोभा से नवीन मेघ को जीतने वाले परमेश्वर आपकी जय हो जय हो। अपने चरणों में निरत महानुभावों को भक्ति प्रदान करने वाले प्रभु आपकी जय हो जय हो। अपने चरित्र से हितैषी मुनियों के समूह की पूजा करने वाले प्रभु आपकी जय हो जय हो। पाप को नष्ट करने वाले अपने भक्तो के धनस्वरूप राघव आपकी जय हो जय हो ॥३७॥

दशरथ सुकृत सरस सुरतरुफल
भुज जलनिधि विलसित रणरस जल।
समरमहित मख निहुत विपुल खल
मयि करुणय करुणित दशमुख बल ॥३८॥

हे महाराज दशरथ के सुकृत कल्पवृक्ष के सुन्दर फल स्वरूप, हे भुजारूप महासागर में वीर रस रूप जल से शोभायमान, हे श्रेष्ठ युद्ध यज्ञ में अनेक खलों की आहुति देने वाले अपने रणकौशल से रावण की सेना को करुण दशा तक पहुँचाने वाले प्रभु श्रीराम मुझ पर कृपा कीजिए ॥३८।

भवति भवति भव भव वति विभवति,
निखिल जगदवति सुखद निगद वति।
तव परिजनमिह निशित विशिखवति,
कथय कथमु कश्चिरनघ परिभवति ॥३९॥

हे निष्पाप पतितपावन श्रीराम आप ही बताइये कि भूतभावन शिव का भी कल्याण करने वाले, समस्त संसार की रक्षा करने

वाले, सुखद शब्दों वाले, तीक्ष्ण बाणों वाले, आप जैसे समर्थ प्रभु के रहते हुए भी यह कलिकाल आपके सेवक समूह को क्यों अपमानित कर रहा है ॥३६॥

त्वयि सति सदमित दुरित दमितवति,
दशमुखमथ खल शमन शमितवति।
शत शत रतिपति रुचिमपि जितवति,
किमभिभवतिकलिरिममिभमितवति ॥४०॥

हे दुष्टों का शमन करने वाले सीतापते ! आप ही बताइये कि जो सन्तों के अनेक कष्ट नष्ट करते हैं जिन्होंने रावण का शमन किया है तथा जिन्होंने अपनी शोभा से कोटि-कोटि कामदेवों को जीता है तथा जो गजेन्द्र का उद्धार करने के लिए नंगे चरणों से उसके पास आए ऐसे आप जैसे समर्थ स्वामी के रहते दुष्ट कलिकाल इस दीन सेवक को क्यों दबाना चाह रहा है ॥४०॥

अवध नगरमुप सरयु परिलषति,
समधि धनद दिशमनुक मभिलषति।
रघुकुल नृपति महित मति विलसति,
दिवमिह विगणित रुचमिव विहसति ॥४१॥

श्री सरयू के तट पर अवध नामक नगर सुशोभित हो रहा है। जो अनुकूल सुखों से युक्त हैं तथा कुवेर की दशा उत्तर में विराजमान है यह रघुकुल के महाराजों से सेवित है तथा अपनी शोभा से स्वर्ग को भी तिरस्कृत करता हुआ उसका परिहास सा कर रहा है ॥४१॥

विधिसुत दुहितृ पुलिन मुपकलयति,
पदमिभ पद-पदमकल मकलयति।
नगर मगर मज कमिह विकलयति,
सुर पुर मघवनमपि विशकलयति ॥४२॥

वह श्री अयोध्या विधाता के पुत्र श्री वसिष्ठ की पुत्री श्री सरयू के तट पर प्रतिष्ठत हैं। वह गजेन्द्रोद्धारक विष्णु के भी अंशी कलाहीन महाविष्णु श्रीराम को भी धारण करती है। अकार अर्थात् वासुदेव से जिन्हें कला प्राप्त है ऐसे ब्रह्मा को सुन्दरता श्री अयोध्या कला से हीन कर देती है। वह नगर नास्तिकता रूप से रहित है और वह ब्रह्मलोक तथा तथा स्वर्गलोक को भी विशिष्ट कला प्रदान करता है तथा पाप के वन को भी समाप्त करता है ॥४२॥

तदधिवसति तपन कुल ममलमति
सततमधिहृदयमहित भुवनपति।
श्रुतिपथनिरत नृपति विशदितकृति
निजयशउडुपति धवलित वसुमति ॥४३॥

उसी नगर में निर्मल बुद्धि वाला तथा निरन्तर अपने हृदय में संसार के स्वामी भगवान की पूजा करने वाला, वेद पथ में लगे हुए अनेक राजाओं से युक्त निर्मल कर्म सम्पन्न तथा अपने यशश्चन्द्र से सम्पूर्ण पृथ्वी को धवल करने वाला सूर्यवंशी राजकुल विराजता है ॥४३॥

प्रथममहह दिनकर सुतमलभत
मनुमथकुलमिदमृषि गुणमरभत।
कलित विपुलधन हयगजरथमत
इरिपुमहिततपदरजसि समरमत ॥४४॥

बड़े हर्ष की बात है कि इसी सूर्यकुल ने सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु को सर्वप्रथम राजा के रूप में प्राप्त किया। अनन्तर राजर्षि परम्परा का आरम्भ किया। वह चतुर धन हाथी, घोड़े रथ आदि से सम्पन्न हुआ और वह सदा काम के शत्रु शंकर द्वारा पूजित शार्ङ्गधन्वा श्रीराम की चरण धूलि में विहार करता रहा ॥४४॥

यदर्वनि भूदमर गणविषविपदि
दनुजदलित गुरु सुरवर परिषदि ।
व्यलसदनिमिषप वृषभ कलककुदि
समिति विहित रिपुतनुज रुधिर नदि ।।४५।।

जिस सूर्य कुल के महाराजा ककुत्स्थ दैत्यों द्वारा देवताओं की विशाल सभा के नष्ट कर दिये जाने पर देवगण की भीषण विपत्ति के समय देवासुर संग्राम में शत्रुओं के रक्त की नदी बहाकर देवराज इन्द्ररूप बैल की ककुद अर्थात डील पर बैठकर युद्ध विजय से विराजमान हुए थे। उस संग्राम में इन्द्र बैल बने थे और उन्हीं के ककुद पर बैठकर युद्ध जीतने के कारण महाराज का ककुत्स्थ नाम पड़ा ।।४५।।

यदतुल नरपति सुतप उदितमिव
हरिमय मथशिवशिरशि निचितमिव ।
निखिल जगदमल सुतनु सुकृतमिव
धरणिमभिलषति निभृतममृतमिव ।।५६।।

जिस कुल के महाराज भगीरथ का तप ही मानो गंगा जी के रूप में उदित हुआ वही मानो भगवान् शंकर के शिर पर द्रवीभूत विष्णु के रूप में एकत्र हुआ और वही समस्त संसार के निर्मल जल शरीरधारी सुकृत के रूप में प्रकट होकर पुञ्जीभूत अमृत के जैसा इस पृथ्वी पर सुशोभित हो रहा है ।।४६।।

यदहह धृतहरिविधु नरपतिजनु-
रभिमृदित विजय सुखशतदल दनु ।
खलमदमथन विरुदधृगसनिधनु
रमरपमपि हसति गुणमृडितमनु ।।४७।।

जो सूर्यकुल अपने गुणों से मन को प्रसन्न कर रहा है । जिसने हरिश्चन्द्र जैसे दानी शिरोमणि राजा को जन्म दिया तथा जिसने

दनुजों की माता दनु के विजय सुखरूप कमल को रौंद डाला अर्थात् सदैव दैत्यों को हराता रहा। दुष्टों के मद को नष्ट करने वाले दिव्यरथ अलंकृत वज्रपाणि इन्द्र का भी जो परिहास करता रहता है ॥४७॥

यदनिशमभिमहित जगदवनज न
निजधनमिवद विहित सुरपुरधनि।
चरितसुरभिसुरभित जनमतिवनि
विभवति सुरपुरमपि विलसदवनि ॥४८॥

जो सूर्यकुल निरंतर जगद् रक्षक परमात्मा के श्री अवतार का का सम्मान करता हुआ अपने धन से कुबेर को भी मदहीन बनाता हुआ अपने चरित्र के सुगन्धि से भक्तो की बुद्धि वाटिका को सुगन्धित करता हुआ तथा पृथ्वी को सुशोभित करता हुआ स्वर्ग लोक को भी समथ बना रहा है ॥४८॥

यदनघमधिमघमरिभिर जितमपि
सदजितमभि जिदवित शुभकृतमपि।
गिरभिगदित चिरचरित चरितमपि
न भवति मदि मदिकरि मुखरितमपि ॥४९॥

जो सूर्यकुल शत्रुओं द्वारा अजेय होकर भी निष्पाप तथा धन धान्य सम्पन्न है। शुभ कर्म वाला होकर भी सदैव परमात्मा से पूर्ण तथा उन्हीं परमेश्वर द्वारा रक्षित भी है। निश्चित रूप से सूर्यकुल के पूर्व किये हुए चरित्रो को सरस्वती अभीष्ट बुद्धि से गाती रहती है। मतवाले हाथियों से मुखरित होता हुआ भी कभी मदान्ध नहीं होता ॥४९॥

वनजनिजनिमृदुमति विलसितमिव
मणिमय भवनि सुखनि परिभृतमिव।

सकल जगदमल सुखद सुकृतमिव
कुलमिह लसति तपन सुचरितमिव ।।५०।।

वह सूर्यकुल इस पृथ्वी पर जल के पुत्र कमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी की बुद्धि के विलास जैसा मणियों से युक्त पृथ्वी की सुन्दर स्वामियों से घिरा जैसा सम्पूर्ण संसार के निर्मल सुखदायक सुकृत जैसा इस पृथ्वी पर सूर्य के चरित जैसा विराजमान है ।।५०।।

क्वचिदपि यदनलगगुरुषु न हि भवति
सकऽबमतमपि विभवमनु भवति ।
सुरभि सुरभिपदरज इह विभवति
कुमपि सुगुणमणिनिकरमभि भवति ।।५१।।

जो सूर्यकुल अपमानित होने पर भी कभी अग्नि एवं ब्राह्मणों पर क्रूद्ध नहीं होता और उनके चरण कमल की सुरभि से सुरभित होकर वैभव का अनुभव करता था। और पृथ्वी को ब्राह्मणों की चरण धूलि से सुरभित कर शत्रुनिकर को पराभूत करता है ।।५१।।

तदमल कुरुत विमलमथ रघुरति
विधुरनुपमगुण विमर्दित जलपति ।
रघुपति चरण कमल सरसित मति
हरिपद रतिरस विगणित शुभगति ।।५२।।

जिसने अपने गुणों से समुद्र को भी तिरस्कृत किया तथा जिसका बुद्धि श्रीराम के चरण कमल में सरस रही और जिसने भगवत् चरण के प्रेम रस से मोक्ष को भी ठुकराया ऐसे उस सूर्यकुल को चन्द्रमा की भाँति श्रीरघु ने अलंकृत किया ।।५२।।

महसि विकलयति दृगजनरविमपि
यशसि विमदयति विधुगुरुकविमपि ।

महसि विकलयति किल धृतपविमपि
वपुषि विगणयति रति जगदविमपि ॥५३॥

जो अपने तेज से द्वादश आदित्य को विकल कर देते थे तथा जो अपने यश से बुध, गुरु और शुक्र को भी मदहीन कर रहे थे। जिन्होंने अपने साहस से वज्रपाणि इन्द्र को भी पीछे किया था तथा जिन्होंने अपने सौन्दर्य से काम को भी लज्जित कर दिया था ॥५३॥

यदमलविभव विजितशत दिनकृति
समुदयति दिनकृदपि भवभयहृति।
निज कुल विरुदमदिश दधपरिहृति
रघुकुलमिति गुणलसति धरणि भृति ॥५४॥

जिसके दिव्य गुणों से करोड़ों सूर्य विजित हुए ऐसे भव भय को नष्ट करने वाले तथा समस्त पापों के हर्ता तथा गुणों से सुशोभित उस महाराज रघु के उदीयमान हो जाने पर सूर्य नारायण ने भी अपने कुल को रघुकुल कहकर सम्मान दिया अर्थात् तब से सूर्य कुल का नाम रघुकुल पड़ गया।

भुवनजिदभि धकस् सुमखमखयत
रघुरधिबिजयमदितिजम सखयत।
विजितनृपति जगदखिल मसुखयत
हरिपदमपि भुवमभि सममुखयत ॥५५॥

महाराज रघु ने विश्वजित नामक श्रेष्ठ यज्ञ किया अपने दिग्विजय से इन्द्र को मित्र बनाया विपक्षी राजाओं को जीतकर सारे संसार को सुखी किया और पृथ्वी पर भी लोगों के लिए भगवान् के चरणों को सम्मुख कर दिया ॥५५॥

रघुरजमपि दयिततनय मलभत
नहि महिसुरगुरु शिशुषु समरभत।

श्रुति निगदित मनुगतपथमरभत
तदनुविरजवपुरमपिसमलभत ।।५६।।

महाराज रघु ने साक्षात् ब्रह्मा को प्रिय पुत्र में प्राप्त किया और वे कभी ब्राह्मण देवता, एवं गुरुओं पर क्रुदध नहीं हुए उन्होंने वेदविहित तथा मनु द्वारा पालित पथ का ही आरम्भ किया। और अन्त में निर्मल शरीर से ही परमात्मा को भी प्राप्त कर लिया ।।५६।।

अज इ रिपुमहित जनक मजनयत
दशरथमजशचितनय मतनयत ।
शरहुतभुजि रिपुवनमदहनयत
सुरपुरसुखमभिमहितलमनयत ।।५७।।

अनन्तर महाराजा 'अज' ने परब्रह्म परमात्मा ही जिसके पुत्र हुए ऐसे पुत्र को उत्पन्न किया तथा भगवान शंकर के द्वारा पूज्य भगवान् श्रीराम के पिता श्री दशरथ को ही जन्म दिया, अपने बाण रूप अग्नि में शत्रुओं को जलाया और पृथ्वी पर भी स्वर्ग का सुख ला दिया ।।५७।।

नरपतिरपि निजरिपुकरमजयत
दिशि दिशि युधि खरशरकर मसृजत ।
श्रुति पथरत इह शुभमखमयजत
सततमजनपद सरसिजमभजत ।।५८।।

उन महाराज दशरथ ने अपने शत्रुओं को जीता और प्रत्येक दिशा में युद्ध में तीक्ष्ण बाणों के समूह का सर्जन किया वेदोक्त दिव्य यज्ञ का यजन किया तथा परमेश्वर के चरण कमल का भजन किया ।।५८।।

अथ रविमदमिध नरपति दुहितरि
हरिरिव हरितिकलित जगदवितरि ।

प्रकटित तनु रभवदवति सवितरि
हरिरधिकमुदित सविधुबुधपितरि ॥५९॥

इसके अनन्तर सूर्योदय से सनाथित दिशा अर्थात् पूर्व दिशा में चन्द्रमा की भाँति सूर्य, बृहस्पति, चन्द्रमा, मंगल, और शनिश्चर के उच्चस्थ होने पर भानुमान महाराज की पुत्री भगवती कौसल्या में परब्रह्म परमात्मा प्रकट हुए ॥५९॥

अधिमधुशितकुजनवमिभुवनपति
रमित सततधृतनलिन चरणरति ।
धृतधनुरिषुखकलित विमलमति
रखिल जगदवन विभुरधिवसुमति ॥६०॥

अनन्तर अनेक भक्तों द्वारा जिस काल में भगवान का चरण चिन्तन किया जाता है । ऐसे मंगलवार चैत्र शुक्ल नवमी मध्यान्ह में विमल बुद्धि वाले सन्तों का सम्मान करने वाले धनुर्बाण धारण किये हुए त्रिभुवनपति भगवान श्रीराम प्रकट हुए ॥६०॥

भजन सरसि भव नवकुवलयमिव
महसि निचित सुरपतिमणिमयमिव ।
दिनकर कुल शुचिसुकृत निचयमिव
जननि अभजदजितमज हृदय मिव ॥६१॥

भगवती कौसल्या ने भगवान श्रीराम को उसी प्रकार प्राप्त करके भजा मानो वे भजन रूप तालाब में प्रकट नवीन नील कमल हों अथवा मानो तेजो राशि में स्थापित इन्द्रनीलमणि हो, या मानो सूर्यकुल के पवित्र सुकृति की राशि हो, मानो बेद भगवान के महातात्पय हों ॥६१॥

धृततनु दशरथसुमख सुकृतमिव
समर्पचिति नलिन मसितमभृतमिव ।

रघुकुलविभवमनघमुपहृतमिव
कृतवपुरहः सकल शुभकृत मिव ॥६२॥

मानो शरीर धारण किये हुये श्री दशरथ के सुकृत हों या मानों भगवान विष्णु द्वारा पूजा के लिये दिया हुआ यह नील कमल हो मानो उपहार में दिया हुआ यह रघुकुल का निष्पाप विभव ही हो, अथवा मानो सम्पूर्ण शुभकर्म हो शरीर धारण करके विराज रहा हो ॥६२॥

भजनरसिक जनविमल नयनमिव
विनत निकर जलकल खगघनमिव ।
सरस परमसुख विशदित घनमिव
दशमुखकुलखल विपिनदहनमिव ॥६३॥

मानो बालक श्रीराम भजनरसिक जनों के विमल नेत्र हों, मानो प्रभु परम विनीत भक्तवृन्दरूप चातकों के स्वाति के घन हों, मानो वे प्रेम परम सुख के विशाल धन हों। तथा मानो रावण एवं खल विपिन को जलाने के लिए अग्नि हों ॥६३॥

धरणिदुहितृशुचिसुकृत सुफलमिव
निखिल भजकजनविपुलितबलमिव ।
अनघ सकलशुभगुणशुचिकुलमिव
रखिकनयन घनमहन सुजलमिव ॥६४॥

भगवती कौसल्या ने शिशु श्रीराम को पृथ्वीपुत्री श्री सीता जी के पुण्यों के फल के समान तथा भजनानन्दी महानुभावों के लिये इकठ्ठे हुए बल के समान तथा निष्पाप सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों के समूह के समान एवं रसिक जनों के नेत्र रूप चातकों के लिए परम पूज्य स्वाति के जल के समान देखा ॥६४॥

तमलमकृत वरवसनवसितमपि
जननि अखिलगुणगणविलसितमपि ।

लघु रघुवरमजसुतजहसितमपि
मुखरुचि भिरमरभरणलसितमपि ॥६५॥

श्रेष्ठ वस्त्रों से सजी हुई होने पर भी दिव्यगुणगणो से शोभायमान होने पर भी अपने मुख की कान्ति से ब्रह्मा पुत्र अत्रि के प्रिय पुत्र चन्द्रमा की हँसी करते हुए भी, देवोचित आभूषणों से परिलसित होने पर भी उन लघु रघुवर बाल राघव को माता कौसल्या ने सुरुचि पूर्ण भाव से सजाया ॥६५॥

भरतफणिपरिपुदमनकलितमह
महिज विभवकरचरणललितमिह ।
हरिमभजतपरिजन दृगशुभदह
मभितृषमनिमिषदशपितृभिरहः ॥६६॥

बड़े हर्ष का विषय है कि सतृष्ण निर्निमेष नेत्रों वाले माताओं तथा पिता श्री दशरथ के साथ श्री अवधवासियों के नेत्रों ने श्री भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, के द्वारा जिनमें उत्सव का आह्वान किया गया है। तथा महिज अर्थात मंगल के समान ही जिनके श्री हस्त तथा श्री चरण लाल-लाल बड़े ही लुभावने हैं जो भक्तों के अशुभ हारी हैं उन श्री हरि को अपने दर्शनानन्द का विषय बनाया ॥६६॥

अनयदहह तमशयननयनभुवि
लघु लघु चरण चलितमचलितकवि ।
दशरथउदितविमलरविकुलरवि
ममज मनुज युत मनुपममधि गवि ॥६७॥

अहो ! जो अपने नन्हें-नन्हें श्री हस्त चरणों से घुटनों के बल चलते हैं और जिनके दर्शनानन्द से कवि भी कभी चलायमान नहीं होते ऐसे नवोदित सूर्यकुल के सूर्य अकार के वाच्य वासुदेव रूप

अजन्मा तथा अनुपम एवं अनुजों सहित वर्तमान उन बालरूप श्रीराम को सहस्रों वर्षों से प्रभु के दर्शनार्थ निद्रा त्यागे हुए अपने निर्निमेष नेत्रपथ पर डुलाते हुए महाराज दशरथ ने इस पृथ्वी पर सर्वप्रथम प्रभु दर्शन का सुख लूटा ॥६७॥

श्रुतिशिरउदितमहित मुनि सुखमिव
मलयमरुदवित सुदिवस मुखमिव ।
धृत नृपशिशु तनु मृदु मधु सखमिव
निज गुण विगणित शतशतमखमिव ॥६८॥

महाराज दशरथ ने श्रीराम को ऐसे देखा कि जैसे वे उपनिषदों में वर्णित परमपूज्य साक्षात् मुनियों के साक्षात् सुख ही हों या मलयाचल के वायु से सुरक्षित बसन्तकालीन दिवस के प्रभात हों। या बालरूपधारी बसन्त के सखा नाम हों अथवा अपने तेजः प्रभाव से करोड़ों इन्द्रों को लज्जित करने वाले साक्षात् अपरोक्ष पर ब्रह्म ही हों ॥६८॥

वदनतइ सख विभबमपिसहरति
चिकुर निकर रुचिभिरलिममोहरति ।
चरणनलिनरत समलमपहरति
दशरथविलसदजिरइह विहरति ॥६९॥

वे प्रभु बाल राघव अपनी मुख कान्ति से काम के सखा चन्द्र का सौन्दर्य चुरा रहे हैं तथा अपपे कुटिल मेचक केशों से भ्रमरों का अनुकरण कर रहे हैं। तथा श्री चरणकमलों में निरत भक्तों के मल का अपहरण कर रहे हैं और इस पृथ्वी पर दशरथ जी के सुन्दर आँगन में विहार कर रहे हैं ॥६९॥

कचनचपलकर चरणमपिचरति
निजप्रतिकृतिमपि इहसि परिचरति ।

जननि करजरवमुदितमनुचरति
महिभिदजिर भुविहरिरिह विचरति ।।७०।।

बालरूप भगवान श्रीराम कहीं-कहीं अपने चंचल हाथों एवं चरणों से घुटनों के बल चलने लगते हैं तो कहीं एकान्त में अपनी परछाई की सेवा करते हैं, कहीं माँ कौसल्या जी की चुटकी का अनुसरण करते हुए उनके पीछे दौड़ने लगते हैं। इस प्रकार सर्व-पापहारी श्री हरि विविध बाल कौतुक करते हुए श्री दशरथ के आंगन में विचरण कर रहे हैं ।।७०।।

कुचिदरमत सह शिशुभिरभिरजसि
सततमिव भजनरसिकजनमनसि ।
चलति विमदयति कलिततृणधनुषि
सधनुरमलजलमुगपि मनुजनुषि ।।७१।।

जिस प्रकार निरंतर भजन रसिक जनों के मन में रमा करते हैं उसी प्रकार श्री अयोध्या में कहीं कहीं पर बालकों के सहित अपनी अभीष्ट धूलि में खेला करते हैं। जब मनुवंशकेतु शिशु श्रीराम सींक का धनुष लेकर चलते हैं तब तो उन पर इन्द्रधनुष से युक्त बादल भी लज्जित हो जाता है ।।७१।।

कुचिदथ किलकति चपलमति चलति
लुठति जननि भव पयसि भुवि ललति ।
दिशि दिशि विकिरति पटमथ विचलति
धयितुमहः समनुननयति विकलति ।।७२।।

अहो ! प्यारे शिशु राघव कहीं पर किलकते हैं कहीं अत्यन्त चपल गति से चलने लगते हैं। कभी माता का दूध पीने के लिये पृथ्वी पर लोट जाते हैं तथा अत्यन्त स्पृहदालु होकर मुख से लार चुआते हैं और दूध पीने के लिये हठ करते हुए चारों ओर अपने

वस्त्र बिखेर देते हैं, मचल जाते हैं, फिर मां का दूध पीने के लिये उन्हें मनाने का प्रयास करते हैं और व्याकुलतापूर्वक रोने लगते हैं ॥७२॥

हरिरजिरमभि नटति ननु विहसति
दशरथमनउदजकमिव विकसति ।
जननिहृदयनिधिरधिहरि विलसति
धृत शिशुतनुरघहरण इह लसति ॥७३॥

अहो ! मेरे मुन्ना सरकार कभी दशरथ के आंगन में नाचते हैं, उन्मुख हास करते हैं उन्हें देखकर दशरथ जी का मन कमल की भाँति विकसित हो जाता है तथा मां का हृदय भी श्रीरामचन्द्र को देखकर समुद्र की भाँति तरंगायित हो जाता है और सर्वपाप-हारी हरि बाल राजकुमार बनकर बहुत ही सुन्दर लगते हैं ॥७३॥

प्रभुमुखममृतसदनमभि विभवति
कलभमह भुजयुगल मभि भवति ।
कुसुम विशिख मनु सुतनु किल भवति
पदयुगमज पितरमपि परिभवति ॥७४॥

शिशु राघव का श्रीमुख चन्द्रमा को तिरस्कृत करता है । अहो भगवान की दोनों भुजाएँ हाथी के बच्चे को भी अपमानित करती हैं । भगवान् के श्री विग्रह काम को भी पीछे कर देते हैं तथा प्रभु के श्रीचरण कमल ब्रह्मा जी के पिता आदिकमल को भी परिभूत कर देते हैं ॥७४।

विधुमुख विलुलित समलकमलयति
नयनयुगलमपि नवलकमलयति ।
तिलक कलित निटिलकमभिकलयति
वनधरवपुरिह विभुरव कलयति ॥७५॥

सर्वव्यापक परमात्मा शिशु राम अपने चन्द्रमुख पर लटकते हुए अलकों को भ्रमरों की भाँति धारण कर रहे हैं, नयन युगल को नवीन कमल जैसे सुशोभित कर रहे हैं। तिलक से युक्त भाल को आदरपूर्वक सजा रहे हैं और नवीन बादल के समान श्री विग्रह से विराजमान हो रहे हैं ।।७५।।

लघु लघुकर पदचर इह विलसति
कलबल वचन कलितमति विहसति।
मुखरुचि शिशिर किरण मपिविरसति
अवध सरसि सरसिजमिव विकसति ।।७६।।

प्रभु श्रीराम अपने छोटे-छोटे हाथ एवं चरणों से चलते हुए बहुत सुन्दर लगते हैं, मीठी तोतली बोली बोलते हुए हँसते हैं। अपने मुख की कान्ति से चन्द्रमा को भी नीरस बना रहे हैं तथा अयोध्यारूप सरोवर में कमल की भाँति विकसित हो रहे हैं ।।७६।।

भवनिधि विषम विपद मवगणयति
जनभय विपिन विषमपि विगणयति।
निखिल निगम गुणगणमपि गणयति
विनत विहित कुकृतमपि न गणयति ।।७७।।

परमात्मा श्रीराम भवसागर की भयंकर विपत्ति को समाप्त कर देते हैं और भक्तों के भयरूप वन के विष को भी शान्त कर देते हैं वेद बोधित समस्त कल्याण गुणों को धारण करते हैं तथा अपने भक्तों के किये हुए कुकृत्यों का भी चिन्तन नहीं करते ।।७७।।

जननिजनक परिजनमपि रमयति
जगदघनिकरमहह स विरमयति।
खलकुलबलमपि सपदि नियमयति
हरिरथ निजजनयममपि यमयति ।।७८।।

वे प्रभु श्रीराम माता पिता एवं परिजनों को बाल लीला से रमाते हैं, अहो ! वे संसार के घोर पापों को भी समाप्त कर देते हैं। परमेश्वर राक्षस कुल की सेना का भी नियन्त्रण करते हैं और अपने भक्त के ऊपर आये हुए यमराज को भी उसे मारने से रोक देते हैं ।।७८।।

क्वचनचटकचलकक मपिसधरति
विहरति हरिरिहमनसिजमधरति।
शिशुरविपटधर-इ भय मपिदरति
प्रभुरथ विषमविपदमपिविदरति ।।७९।।

श्री राघव सरकार कहीं तो चंचल गौरैया एवं कौवे को पकड़ लेते हैं कहीं पर विहार करते हुए काम को भी तिरस्कृत कर देते हैं। बालोचित वस्त्र धारण करते हुए काम भय को नष्ट कर देते हैं और अपने भक्तों की भयंकर विपत्ति को भी विदीर्ण कर देते हैं ।।७९।।

कृत कररवमभि नटति परिशुकति
कलबलमति मृदुवदति किल पिकति।
विचरति विहसति विभुरति किलकति
सुखयति पितरमखिलमपितिलकति ।।८०।।

कहीं पर श्रीमुन्ना सरकार ताली बजाकर नाचते हैं, कभी तोते की बोली बोलते हैं, कभी मीठे-मीठे तोतले वचन सुनाते हैं कभी कोयल की भाँति बोलते हैं। इस प्रकार विचरण करते हुए बाल विहार करते हुए परमात्मा किलकते हैं और अपने पिताश्री को सुखी करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के तिलक बन जाते हैं।

धनुरिषुरिषुधिमधिकटिकिल धरसि
निजपदसरसिज भजकमनुसरसि।

निजयशउडुपति रसमिह वितरसि
गिरिधरहृदि लघु रघुवर विहरसि ॥८१॥

हे छोटे सरकार! आप धनुष-बाण तथा कटि में तरकस धारण करते हैं तथा अपने चरण कमल का भजन करने वालों के पीछे-पीछे दौड़ते हैं एवं प्रत्येक दिशा में अपने यशश्चन्द्र के रस का वितरण करते हैं और मुझ गिरिधर के हृदय में बालरूप से विहार करते रहते हैं ॥८१॥

मदनमथव भव निशिचर कुल दव
परम सुभग भग हत दशमुख जव।
हर मम दुरितमिह मुदित मयि भव
कुटिल कलित इममथ गिरिधर मव ॥८२॥

हे कामारि शंकर का कल्याण करने वाले राक्षस कुल के दावाग्नि परम सुन्दर अपने ऐश्वर्य से रावण के वेग को समाप्त करने वाले प्रभु श्रीराम! मेरे पाप नष्ट कीजिए, मुझ पर प्रसन्न जाइये। हे राघव, इस गिरिधर को कुटिल कलिकाल से बचा लीजिए ॥८२॥

दशरथ सुकृतसुतरुफल जय जय
अशरण शरण गलित मल जय जय।
शितशर निहत कुटिलखल जय जय
लघु रघुवर गिरिधर बल जय जय ॥८३॥

हे दशरथ जी के पुण्यकल्पवृक्ष के सुन्दर फल अवधेश आपकी जय हो जय हो। हे अशरणशरण भक्तों के मल नष्ट करने वाले आपकी जय हो, जय हो। हे अपने तीक्ष्ण बाणों से कुटिल खलों का बध करने वाले आपको जय हो, जय हो। हे गिरिधर के बल लघु बालरूपधारी रघुवर आपकी जय हो, जय हो ॥८३॥

इति निजरतिहृति मलमतिमपहर
मम गिरि भणित मनघमिदमनुहर।
लघुरघुवरमव नृपति तनय वर
गिरिधर मनसि विहर लघु रघुवर ॥८४॥

इस प्रकार अपनी प्रीति को नष्ट करने वाली मेरी पापीयसी बुद्धि का हरण कर लीजिए। मेरी वाणी में कहे हुए निष्पाप इस लघुरघुवर नामक दीर्घमात्रारहित काव्य को अपने हृदय में धारण कीजिए। हे दशरथ राजकुमार मेरी रक्षा कीजिए, हे लघुरघुवर शिशु राघव! मुझ गिरिधर के हृदय में निरन्तर विहार कीजिए। ॥८४॥

इति श्रीचित्रकूट श्रीतुलसीपीठाधीश्वर—
धर्मचक्रवर्ती महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी रामभद्राचार्य प्रणीतं
कलितप्रतिवर्णलघुमात्रं 'लघुरघुवर' नाम चित्रकाव्यं सम्पूर्णम्।
लघु रघुवर निज काव्य कर कृत हिन्दी अनुवाद।
गिरिधर रचित सदा हरे सबके विषम विषाद॥
श्रीराघवः शन्तनोतु।

—:०:—

।। श्रीः ।।

जीवन के पञ्चपाथेय

१. भगवान् श्रीसीताराम जी की शरणागति में प्राणिमात्र का अधिकार है।

२. हिन्दुत्वभावना एक ऐसी गंगा है जिसके स्पर्श से समस्त संसार पवित्र हो सकता है।

३. वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था ही सनातन धर्म का मूलमंत्र है।

४. जगत् को स्वभाव से जीतो प्रभाव से नहीं।

५. वैष्णवता ही मानवता की संजीवनी सुधा है।

सर्वाम्नाय अनन्त श्रीसमलंकृत श्रीतुलसीपीठाधीश्वर
धर्मचक्रवर्ती जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामीश्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

(चित्रकूटधाम)